41

1971 में बिहार विधानसभा का कांग्रेस-प्रत्याशी बनने की भूमिका तथा अन्य सामाजिक कार्य

मेरे राजनीतिक कार्यकलापों की सीमा नगरपालिका के क्षेत्र तक ही सीमित थी। नगर से एम. एल. ए. के चुनाव में यद्यपि मेरी प्रतिष्ठा दाँव पर थी और एक प्रकार से मैंने ही चुनाव लड़ा था और विजय पायी थी, परंतु उसमें मैं स्वयं प्रत्याशी नहीं था। यदि मैं स्वयं प्रत्याशी होता तो मेरी वाणी में वह बल नहीं होता जो उस समय आ गया। जहाँ निःस्वार्थ भावना से प्रेरित होकर देश के लिए प्राणों की बाजी लगानेवाले एक उपेक्षित क्रांतिकारी को उसका उचित देय दिलाने में मुझे सचेष्ट समझा जा रहा था, वहीं, स्वयं प्रत्याशी बनने पर, मैं असेंबली में जाने को लालायित एक मारवाड़ी पूँजीपति मात्र बनकर रह जाता। उस अवस्था में मैं कभी जनता का वह प्रेम नहीं पा सकता था जिसने, 1962 के कांग्रेस की हवा के दौर में, इंदिरा गाँधी तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू के प्रयत्नों के बावजूद, मुझे विजय दिलवा दी थी। मैंने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि गया नगर से असेंबली के प्रत्याशी के रूप में मेरा नाम भी जायगा। परंतु 1971 में ऐसा संयोग उपस्थित हो गया। मेरे अभिन्न मित्र आदरणीय कामतासिंह के निधन के बाद उनके पुत्र शंकरदयाल से मेरा चाचा-भतीजे का पारिवारिक संबंध सतत बना हुआ था। शंकरदयाल की प्रतिभा राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं, साहित्य में भी अपने पिता के समान ही चमक रही थी। वे लेखक के रूप में तो अखिल भारतीय प्रसिद्धि पा ही रहे थे, एम. पी. बनने के बाद इंदिराजी के भी परम कृपापात्र बन गये थे। बाँगला देश की विजय के बाद इंदिराजी की और उनके व्यक्तित्व के कारण कांग्रेस की प्रतिष्ठा आकाश पर थी। 1971 के आम चुनाव का समय आते ही ऐसा समझा जा रहा था कि कांग्रेस के प्रत्याशी की विजय निश्चित है। दिल्ली में केंद्र तथा विभिन्न प्रदेशों की विधानसभाओं के प्रत्याशियों की उसी प्रकार भीड़ जुटी हुई थी जैसी कुंभ के मेले में स्नानार्थियों की। कांग्रेस की ओर से सात व्यक्तियों की एक चुनाव-समिति बनी

थी जिसके शंकरदयाल सिंह भी एक सदस्य चुने गये थे। कांग्रेस के इतिहास में पहली बार बिहार के किसी व्यक्ति को यह गौरव मिल सका था। शंकरदयाल ने शिमला से, जहाँ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हो रहा था, मुझे एक पत्र भेजा था जिसमें चुनाव-समिति के लिए अपने चुन लिये जाने की सूचना थी। उन्हें इंदिराजी ने प्रत्याशी बनने का आदेश दिया था। शंकरदयाल सिंह ने लिखा था कि जो व्यक्ति एक लाख रुपये जीतने के लिए एक रुपये की लाटरी खरीदता है उसके मन के भी किसी कोने में एक क्षण के लिए यह आशा अवश्य जागती है कि शायद लाटरी उसके नाम से निकल जाय, पर मैंने तो वैसी भी कल्पना चुनाव-समिति में आने के विषय में नहीं की थी। शंकरदयाल ने आगे लिखा, 'प्रदेश और केंद्र में कांग्रेस की ओर से हजारों प्रत्याशियों को चुनने का अवसर मुझे प्राप्त है। ऐसी स्थिति में यदि मैं आपको गया नगर की असेंबली की सीट के लिए प्रत्याशी न चुन सकूँ तो मेरे चुनाव-समीति में आने का क्या अर्थ है!' मैंने नगरपालिका के द्वारा गया नगर की सेवा करके काफी यश कमाया था। जब 1961 में मैंने श्याम वर्थवार को असेंबली में चुनवाने के लिए अपनी प्रतिष्ठा दाँव पर लगा दी थी तो जनता ने जिस तरह मेरा मान रख लिया था उससे भी नगर में मेरी धाक जम गयी थी। कवि के रूप में तो मैं लोकप्रिय था ही। अतः इंदिरा गाँधी का समर्थन पाकर कांग्रेसी प्रत्याशी के रूप में खड़े होने पर मेरी जीत निश्चित थी। नगर की सीट के लिए केंद्र में तीन नाम भेजे गये जिनमें एक नाम मेरा था। दूसरा नाम था गया जिला कांग्रेस कमिटी के तत्कालीन अध्यक्ष अनंतदेव मिश्र का जो यद्यपि मेरे मित्र थे पर स्वयं भी प्रत्याशी बनने को उत्सुक थे। तीसरा नाम मेरे एक दूसरे मित्र मगध विश्वविद्यालय के उपकुलपति गोपाल प्रसाद अग्रवाल का था जिन्होंने सीट पाने के लिए अपने कुलपति-पद से त्यागपत्र देने की घोषणा कर दी थी।

उन्हीं दिनों मैं हिंदी में गजलों का प्रयोग कर रहा था। मेरे मित्र विश्वनाथ सिंहजी ने जब मेरे कांग्रेस की ओर से असेंबली के प्रत्याशी बनने की बात सुनी तो मुझसे बोले, 'आप साहित्य का इतना बड़ा क्रांतिकारी प्रयोग आरंभ कर रहे हैं, राजनीति में सक्रिय होने पर क्या वह सारा ठप्प नहीं हो जायगा?' मैंने उनकी आपत्ति को सही करार देते हुए भी अपनी ओर से यही तर्क रक्खा कि सक्रिय जनसेवा के अवसर से पलायन करना उचित नहीं है। यदि ईश्वर मुझसे साहित्य में यह नया प्रयोग करवाना चाहता है तो वह कोई न कोई मार्ग अवश्य ढूँढ़ निकालेगा। दिल्ली में टिकट पाने को तो मेला लगा ही हुआ था और उसके लिए

मुझे जाना ही था परंतु मेरे साढू धनश्यामदास के पुत्र विजय के विवाह का निमित्त भी बन गया और उसका लाभ उठाकर मैं उस अवसर पर प्रायः 15 दिन दिल्ली में टिका रहा। शंकरदयाल सिंह चुनाव-समिति के सदस्य तो थे ही, मध्यप्रदेश तथा हरियाना के प्रत्याशियों की प्रारंभिक छानबीन के एक मात्र निर्णायक भी थे। कांग्रेस की चुनाव समिति के प्रत्येक सदस्य को एक या दो प्रदेश प्रारंभिक जाँच के लिए सौंप दिये गये थे। चुनाव समिति के सदस्य के नाते ही यह अतिरिक्त भार उन्हें सौंपा गया था, अंतिम निर्णायकों में तो वे थे ही।

चुनाव के इस कार्य के लिए मेरे प्रतिद्वंद्वी अनंतदेव मित्र तथा गोपाल प्रसाद अग्रवाल भी दिल्ली पहुँच गये थे और उन दोनों ने भी अपनी भागदौड़ प्रारंभ कर दी थी। मुझे तो अपनी ओर से कुछ विशेष प्रयत्न नहीं करना था। शंकरदयाल सिंह के निवास पर केवल प्रतिदिन का समय इधर-उधर की चर्चा में बिताना था। वहाँ का दृश्य भी अत्यंत मनोरंजक था। मुख्यमंत्रियों को शंकर दयाल के निवास पर तितली की तरह मँडराते देखना विस्मयकारक तो था ही, यह भी संकेत देता था कि अधिकार-सुख पाने के लिए मनुष्य को कितना प्रयत्न करना पड़ता है। प्रत्येक प्रदेश का मुख्यमंत्री चाहता था कि उसके गुट के अधिक से अधिक व्यक्तियों को सीट मिल जाय ताकि नयी असेंबली में उन्हें मुख्यमंत्री बनने में कठिनाई न हो। इसके लिए चुनाव-समिति के सदस्यों की कृपा का ही सहारा था। उन सदस्यों में शंकरदयाल सिंह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे क्योंकि यह बात जाहिर थी कि वे इंदिराजी के कृपापात्र हैं। इंदिराजी के पास तो पैरवी हो नहीं सकती थी, अतः शंकरदयाल सिंह के द्वारा ही यह कार्य संपादित हो सकता था। दूसरे सात सदस्यों में थे श्री जगजीवनराम, स्वर्ण सिंह, वाई. बी चौहान, आदि। इंदिराजी इस समिति की अध्यक्ष थीं। समिति की बैठक प्रतिदिन संध्या 4 बजे से 6 बजे तक होती थी और प्रतिदिन एक प्रदेश के भाग्य का निर्णय कर दिया जाता था। सुबह में इंदिराजी के यहाँ से संबंधित प्रदेश के प्रत्याशियों की एक सूची शंकरदयाल सिंह के पास आ जाती थी जिसमें यह संकेत भी रहता था कि उन्हें किस प्रत्याशी का समर्थन करना है। उनको उस प्रत्याशी के पक्ष में बोलते ही इंदिराजी का समर्थन मिल जाता था और वह चुन लिया जाता था। स्वर्ण सिंह, वाइ. बी. चौहान और जगजीवनराम आदि की शंकरदयाल सिंह के सामने कुछ नहीं चल पाती थी क्योंकि शंकरदयाल सिंह उसी व्यक्ति के नाम को आगे बढ़ाते थे जिसके विषय में उन्हें पहले से इंदिराजी का संकेत मिल चुका होता था। इन सब कारणों से शंकरदयाल के अंतरंग कक्ष में बैठा-बैठा मैं प्रत्याशियों की भागदौड़ का आनंद तो लेता ही था,

चुनाव-समिति की प्रतिदिन की मनोरंजक कार्यवाही का भी विवरण उनके मुख से सुनता था। मेरे दोनों प्रतिद्वंद्वी, अनंतदेव मिश्र और गोपालप्रसाद अग्रवाल भी समय-समय पर वहाँ दिखाई दे जाते थे। यद्यपि हम तीनों व्यक्ति आपस में प्रतिद्वंद्विता कर रहे थे परंतु हमारी मित्रता में इससे कोई अंतर नहीं आया था। वे दोनों शंकरदयाल सिह से मेरी घनिष्ठता के कारण थोड़ा निराश तो थे परंतु अन्य स्थानों पर अपनी भागदौड़ करते जा रहे थे। गोपाल प्रसाद को उस समय के प्रमुख केंद्रीय मंत्री एल. एन मिश्रा का समर्थन प्राप्त था। वे पैसा तो पानी की तरह खर्च कर ही रहे थे, एम. एल. ए. बनने के लिए कुलपति-पद से त्यागपत्र देने की घोषणा द्वारा उन्होंने एक ऐसा धमाका भी कर दिया था जिसका मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। इंदिराजी ने उस समय कांग्रेस की एक नीति यह भी घोषित की थी कि असेंबलियों में बुद्धिजीवियों को अधिक से अधिक सीट देनी है। कुलपति होने के कारण बुद्धिजीवी होने का तो उन्हें प्रमाणपत्र स्वतः प्राप्त था, अतः मेरे सब से प्रबल प्रतिद्वंद्वी वही थे। अनंतदेव मिश्र के पक्ष में केवल यही एक तर्क था कि वे कांग्रेस के पूर्णतः समर्पित और सही अर्थों में कर्मठ कार्यकर्ता थे जब कि हम दोनों अवसर का लाभ उठाना चाहते थे।

प्रत्याशियों के चुनाव में इंदिराजी बड़ी सावधानी बरत रही थीं। प्रत्येक प्रत्याशी के संबंध में उनके पास चार फाइलें रहती थीं। पहली फाइल उस स्थान की कांग्रेस कमेटी की, जहाँ से वह व्यक्ति प्रत्याशी था, दूसरी फाइल प्रदेश-कांग्रेस की ओर से भेजे गये पर्यवेक्षक की, तीसरी फाइल प्रदेश कांग्रेस की और चौथी फाइल गुप्तचर विभाग की इन चारों फाइलों के आधार पर वे अपना निर्णय लेती थीं और उसका संकेत शकर दयाल को मिल जाता था। इंदिराजी का एक विचार यह भी था कि एक परिवार के दो व्यक्तियों को असेंबली या लोकसभा में सीट न दी जाय। यदि किसी परिवार का कोई व्यक्ति केंद्रीय या प्रादेशिक धारासभा में पहले से था तो उसके परिवार के दूसरे व्यक्ति को कहीं से भी सीट न देने के उनके विचार से कई व्यक्तियों को निराशा का सामना करना पड़ा था जिनमें उनके मंत्रिमंडल की सदस्या सरोजिनी महिषी भी एक थी।

शंकरदयाल के साथ मैंने इस चुनाव-नाटक के कितने ही मनोरंजक दृश्य देखे। बिहार के दो प्रमुख नेता श्री सत्येंद्रनारायण सिंह तथा श्री रामलखन यादव को इस बार सीट नहीं मिल रही है, यह अफवाह गर्म थी। सत्येंद्र नारायण सिंह बिहार के मुख्यमंत्री रह चुके थे और रामलखन सिंह यादव तो पुराने नेताओं में प्रमुख थे और कई बार मंत्रिपद सँभाल चुके थे। रामलखन सिंह यादव

शंकरदयाल सिंह के परम हितैषी भी थे। इंदिराजी के, एक परिवार के दो व्यक्तियों को विधान सभा या लोकसभा में सीट न देने के उपर्युक्त निर्णय के फलस्वरूप, केंद्रीय चुनाव-समिति में एक संकट पैदा हो गया। जगजीवनराम अपने पुत्र सुरेशजी को बिहार से असेंबली की सीट दिलवाना चाहते थे। जब बिहार की विधानसभा के लिए प्रत्याशी चुनने की बारी आयी तो इंदिराजी ने कहा कि चूंकि सुरेशजी के पिता जगजीवन बाबू केंद्रीय मंत्री हैं इसलिए उन्हें सीट नहीं दी जा सकती। इसके पहले दिन वे अपने मंत्रिमंडल की एक सदस्या के भतीजे को इसी आधार पर छाँट चुकी थीं। जगजीवन राम इंदिराजी की बात पर उखड़ गये और बोले कि तब आप लोग जो चाहें निर्णय ले लें, मैं जाता हूँ। इस पर बिहार प्रदेश का सारा निर्णय दूसरे दिन के लिए टाल दिया गया। दूसरे दिन सुबह जगजीवन रामजी बंबई चले गये। मुझे शंकरदयाल ने औपचारिकता निबाहने को बिहार के लिए बनी पाँच व्यक्तियों की छानबीन करनेवाली कमेटी के सदस्यों से मिलने को कहा। मैं जब जगजीवन राम के घर पर गया तो ज्ञात हुआ कि बाबूजी (उन्हें लोग बाबूजी कहते थे) रूंठकर बंबई चले गये हैं। उनके रूंठने का कारण भी सब को विदित था। दूसरे सदस्य थे बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री श्री दरोगा राय। मैं उनसे मिलने गया तो वे अपने समर्थकों की भीड़ में घिरे हुए बैठे थे। मैंने अपना बायोडेटा उन्हें देते हुए कहा, 'मैं साहित्यकार और कवि हूँ, मेरा महाकाव्य **उषा** मगध विश्वविद्यालय में बी. ए. में पढ़ाया जाता है और कई विश्वविद्यालयों में मुझ पर एम. ए. के शोधनिबंध लिख चुके हैं। सही अर्थों में बुद्धिजीवी मैं ही हूँ। मेरे प्रतिद्वंद्वी गोपाल प्रसाद को कुलपति होने के कारण ही बुद्धिजीवी नहीं माना जा सकता।' गोपाल प्रसाद अग्रवाल का नाम सुनते ही दरोगा राय भड़क गये। बोले, 'कौन गोपाल प्रसाद, वही जो मगध विश्वविद्यालय में कुलपति हैं?' मैंने कहा, 'जी हाँ, वही गया के क्षेत्र से विधान-सभा की सीट पाने के लिए मेरे प्रतिद्वंद्वी हैं।' दरोगा राय आसपास खड़े लोगों को सुनाते हुए जोरजोर से कहने लगे, 'अरे, वह तो ठेकेदार है। उसका बौद्धिकता से क्या सरोकार! मेरे मुँह पर कालिख पुती हुई है क्योंकि मेरे मुख्यमंत्रित्व-काल में मेरे हस्ताक्षर से ही वे कुलपति बने थे। मैंने एम. एस. सी. समझकर उनका नाम सम्मुख आते ही हस्ताक्षर कर दिया था। मुझसे बड़ी भारी भूल हो गयी। उनके इस प्रकार बोलने से मैं संकोच में पड़ गया। गोपाल प्रसाद व्यक्तिगत रूप से मेरे मित्र थे। मैंने सोचा कि आसपास खड़े लोगों द्वारा उन्हें दरोगाराय के इस आक्रोश की सूचना मिलने से वे यही समझेंगे कि मैंने ही ठेकेदारी के संबंध में दरोगाराय के कान भर दिये हैं। मैंने कहा 'मैं उनके विरुद्ध

कुछ नहीं कह रहा हूँ। मैं तो केवल अपने बुद्धिजीवी होने का दावा प्रस्तुत कर रहा हूँ। कहीं ऐसा न हो कि बुद्धिजीवियों को अधिक से अधिक कांग्रेस की टिकट देने की नीति के आधार पर ही मैं टिकट से वंचित कर दिया जाऊँ।' दरोगा राय उसी लहजे में जोरजोर से बोले, 'आप यदि दूसरे प्रतिद्वंद्वी के विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहते हैं तो आप हरिद्वार में जाकर योगसाधना करें। विधानसभा आपके लिए उपयुक्त स्थान नहीं है। यहाँ तो दूसरों को धक्का देकर हटाते हुए ही अपना स्थान बनाना होता है।' मैं क्या बोलता! चुपचाप सामने से हट गया। बाद में मैं दूसरे सदस्य श्री केदार पांडे से मिलने गया। वे भी बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री और भारत सरकार के रेलमंत्री रह चुके थे। हिंदू विश्वविद्यालय में वे मेरे समकालिक विद्यार्थी रह चुके थे और बिरला होस्टल के उसी वार्ड में नीचे के तल्ले पर रहते थे जिसमें मैं रहता था। विश्वविद्यालय में कविरूप में प्रसिद्ध होने के और बिहार का निवासी होने के कारण मैं उनसे परिचित था। परंतु तीस वर्ष पहले के उस हलके-फुलके परिचय की स्मृति उन्हें होगी, इसकी मैं आशा भी नहीं कर सकता था। परंतु मुझे देखते ही वे ठठाकर हँस पड़े और बोले 'अच्छा, आप भी इस दौड़ में शामिल हैं।' वे मुझे भूले नहीं थे, यह मेरे लिए एक सुखद आश्चर्य था। कवि के रूप में बिहार के साहित्यिक क्षेत्र में और विश्वविद्यालय के क्षेत्र में मेरा नाम परिचित था और साहित्यानुरागी होने के कारण समय-समय पर मेरी चर्चा सुनने से भी संभवतः मेरी स्मृति उनके मन में बनी रही हो तो आश्चर्य नहीं। किसी भी अवस्था में, उनकी ओर से मैं पूर्णतः आश्वस्त हो गया।

इसके बाद चौथे सदस्य थे मध्यप्रदेश के श्री उमाशंकरजी दीक्षित। वे राजनीति में इंदिराजी के अत्यंत निकटस्थ समझे जाते थे और केंद्रीय मंत्रिमंडल में सब से महत्त्वपूर्ण सदस्यों में उनकी गणना होती थी। उनके यहाँ भारत भर की विधानसभाओं की सदस्यता के प्रत्याशियों की लाइन लगी थी क्योंकि केवल बिहार के ही नहीं सारे भारत के प्रत्याशी उनकी अनुशंसा के आकांक्षी थे। वे स्वयं किसीसे नहीं मिल रहे थे। उनकी विदुषी पुत्रवधू प्रत्येक व्यक्ति के दावे को नोट करती जाती थी और उसके प्रमाण में दिये गये कागज लेती जाती थी। मेरे बायोडेटा को देखकर और मेरे कवि एवं बुद्धिजीवी होने की बात सुनकर वह बोली 'आपका प्रत्याशी चुना जाना तो निश्चित है। ऐसे व्यक्ति कांग्रेस में आयें तो यह कांग्रेस के लिए गौरव की बात होगी।' उसकी बातों से अत्यंत प्रसन्न होकर मैंने समझा कि मैंने बड़ा भारी मैदान जीत लिया है।

मैं इन सब बातों की जानकारी शंकरदयालजी को देता जाता था क्योंकि एक

प्रकार से मेरा डेरा वहीं था और घूम फिरकर मैं उनके पास ही पहुँच जाता था। जगजीवन राम के रूठकर चले जाने की बात बिजली की तरह फैल गयी थी। उसका कारण भी सर्वविदित था। चुनाव में बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री सत्येंद्र नारायण सिंह एवं दूसरे प्रमुख यादव नेता एवं मंत्री श्री रामलखनसिंह यादव को पहले ही इंदिराजी ने बिहार-विधानसभा की सदस्यता न देनें की घोषणा कर दी थी क्योंकि उन दोनों पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाये जा रहे थे। मैं शंकरदयाल के पास बैठा था कि रामलखनसिंह यादव आये और बोले -- 'मैं इंदिराजी से मिलकर आ रहा हूँ। मैंने उनसे कह दिया है कि सत्येंद्रनारायण सिंह को और मुझे सीट न देने के कारण राजपूत और ग्वालों का वोट बिहार में कांग्रेस को नहीं मिलनेवाला है। अब जगजीवनराम भी यदि मुँह फेर लेते हैं तो हरिजनों के वोटों से भी कांग्रेस वंचित हो जायगी। ऐसी स्थिति में बिहार प्रदेश कांग्रेस के हाथ से निकल जायगा, यह मानकर ही आपको चलना होगा।' इंदिराजी ने कहा 'ठीक है, मैं बिहार की सीटों के बँटवारे के समय अनुपस्थित रहूँगी। और लोग जैसा चाहे निर्णय लें, मैं अपनी उपस्थिति में एक परिवार के दो व्यक्तियों को किसी भी विधानसभा के लिए न चुनने के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं कर सकती जिसका मैं अब तक पालन करती आयी हूँ। आप लोग जगजीवन रामजी को इसकी सूचना दे दें। मेरी अनुपस्थिति में चुनाव-समिति उनके पुत्र को बिहार विधान सभा की सीट दे सकती है। इसीलिए चुनाव समिति की एक दिन की बैठक में अनुपस्थित रहने के लिए मैं कोलकाता जा रही हूँ। आज बिहार की सीटों के निर्णय में मैं भाग नहीं लूँगी।'

इस सूचना को पाकर जगजीवन राम वायुयान से तुरत दिल्ली लौट आये। इंदिराजी की अनुपस्थिति में कांग्रेस चुनाव-समिति की संध्याकालीन बैठक प्रारंभ हुई।

इसके पूर्व कुछ ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी थी कि गोपाल प्रसाद अग्रवाल और श्री अनंतदेव मिश्र को चुनाव-दंगल से हटना पड़ा था और मैं ही एक मात्र गयानगर से बिहार विधानसभा का प्रत्याशी रह गया था। इस दृष्टि से मेरी सीट एक प्रकार से निश्चित थी। मेरे उपर्युक्त दोनों प्रत्याशियों को क्यों हटना पड़ा इसका विशेष कारण था।

बिहार से श्री एल. एन. मिश्र के लोकसभा के एक उपचुनाव में विजयी होने की सूचना पाकर गोपाल प्रसाद अग्रवाल ने उनकी विजय मनाने को एक बहुत बड़ी दावत दी। इसमें दिल्ली में सीट के लिए आये हुए प्रत्याशियों की भीड़ तो

सम्मिलित हो ही गयी, कितने ही मिनिस्टर भी सम्मिलित हुए जो एल. एन. मिश्र के गुट के थे। इस दावत में गोपाल प्रसाद ने पचासों हजार रुपये व्यय किये। यह दावत उनके लिए जान का जंजाल बन गयी क्योंकि वे एल. एन. मिश्र के गुट के सदस्य के रूप में पहचान लिए गये और कांग्रेस के दूसरे सभी गुट उनके विरोध में खड़े हो गये। इतने रुपये खर्च करने के कारण उनकी पूँजीपति ठेकेदार की छवि भी कांग्रेस में उजागर हो गयी जिससे कांग्रेस बचना चाहती थी। इस प्रकार उन्होंने अपनी जड़ स्वयं खोद डाली। उन्होंने यह सोचकर कि असेंबली की सीट तो नहीं ही मिलनेवाली है, मैं मगध विश्वविद्यालय के उपकुलपति-पद से भी क्यों हाथ धोऊँ, प्रत्याशी बनने का अपना आवेदन वापस ले लिया और मुझे बधाई देते हुए गया लौट गये।

दूसरे प्रत्याशी मेरे मित्र अनंतदेव मिश्र, शंकरदयाल की और मेरी निकटता देखकर और मुझसे भी घनिष्ठता रहने के कारण चुनाव के अनिश्चित परिणाम से बचने के लिए शंकर दयाल से यह कहते हुए कि आप मुझे राज्यसभा में नामांकित होने में सहायता कर देंगे, विधानसभा की सीट गुलाबजी को ही दे दें, चुनाव के दंगल से हट गये। इस प्रकार दोनों प्रत्याशियों के हट जाने से मैं एक मात्र बिहार विधानसभा का गया नगर से प्रत्याशी रह गया।

गोपाल प्रसाद के निराश होकर लौट जाने के कारण तथा श्री अनंतदेव मिश्र के द्वारा अपना नाम वापस ले लिये जाने के कारण मेरी सीट तो एक प्रकार से निश्चित-सी ही थी। जब शंकरदयाल चुनाव समिति की बैठक से लौटे तो मुझे सामने बैठे हुए देखकर भी बिना कुछ बोले और मुझसे आँखे चार किये, सीधे अंदर के कमरे में चले गये। मैंने समझ लिया कि कुछ गड़बड़ी अवश्य हो गयी है अन्यथा शंकरदयाल नित्य की तरह बिना मुझसे बातें किये, इस प्रकार सीधे अंदर कैसे जा सकते थे। एक आशंका यह भी हो गयी कि कहीं उनकी तबीयत तो एकाएक खराब नहीं हो गयी है। पीछे सारी बातों का पता चला। चुनाव समिति द्वारा जगजीवन राम ने अपने पुत्र को तो सीट दिलवा ही दी, गया क्षेत्र से मेरा नाम आते ही जुगलप्रसाद नामक एक सर्वथा नये अज्ञात व्यक्ति का नाम प्रस्तुत कर दिया जो गया में डाक्टरी की प्रैक्टिस करता था और जाति का कहार था। तीन व्यक्तियों में से दो के हट जाने से गया की सीट के लिए केवल मेरा नाम ही रह गया था, परतु एक नया नाम आने से शंकरदयाल हक्का-बक्का रह गये। उन्होने कहा 'उस व्यक्ति को तो कोई जानता भी नहीं है। किसी ओर से भी उसका नाम अनुशंसित भी नहीं हुआ है। गुलाबजी गया के अत्यंत लोकप्रिय व्यक्ति हैं

और एक मात्र उन्हींका नाम अनुशंसित व्यक्तियों में हमारे सामने है।' इस पर जगजीवनरामजी ने कहा 'शंकरदयालजी, मैं भी बिहार का रहनेवाला हूँ और गया के विषय में थोड़ी-बहुत जानकारी रखता हूँ। क्या सारे गया जिले से एक भी कहार को सीट नहीं दी जायगी!' उनके यह कहते ही स्वर्णसिंह और चौहान, जो चुनाव-समिति में इंदिराजी के प्रभाव के कारण शंकरदयालजी के सामने, वरिष्ठ होते हुए भी, बोल नहीं पाते थे, और इसलिए शंकरदयालजी से मन-ही-मन चिढ़े रहते थे और चुप रहते थे, एक साथ बोल उठे, 'भला बाबूजी से अच्छा गया जिले के बारे में दूसरा कौन जान सकता है। बाबूजी की राय को तो मानना ही चाहिए।' शंकरदयालजी अकेले पड़ गये। इंदिराजी का वह स्थान रिक्त था जहाँ से नित्य उनकी बात का समर्थन होता था और स्वर्णसिंह एवं चौहान दाँत पीसकर रह जाते थे। उन्हें शंकरदयाल सिंह से बदला चुकाने का इससे अच्छा अवसर नहीं मिल सकता था क्योंकि मेरे विषय में यह जानकारी हो चुकी थी कि मैं मात्र साहित्यिक हूँ और शंकरदयालजी का निजी व्यक्ति होने के कारण वे मुझे टिकट दिलाना चाहते हैं। मुझे टिकट से वंचित करके ही वे शंकरदयाल को नीचा दिखा सकते थे। एक लोककथा है कि एक बार विष्णु भगवान शिव से मिलने गरुड़ पर बैठकर कैलाश पधारे। शिव के गले में पड़े साँप बड़ी शान से गरुड़ के सामने फुँफकार छोड़ते रहे और गरुड़जी मन मसोसकर यह सहन करते रहे क्योंकि वे साँप शिव के गले में पड़े थे। कहीं अन्यत्र होते तो गरुड़ उन्हें इस उद्दंडता का क्षण मात्र में पूरा मजा चखा देते परंतु वहाँ वे विवश थे। इसी प्रकार इंदिराजी की उपस्थिति में उनके प्रियपात्र होने और उन्हींकी चुनी हुई सूची को आगे बढ़ाते रहने के कारण, शंकरदयाल के द्वारा प्रस्तुत किये गये नामों पर कोई चूँ करने का भी साहस नहीं कर पाता था और करता था तो इंदिराजी उसकी आपत्ति को निरस्त कर देती थीं। परंतु उस दिन तो बात और ही थी। इसलिए मेरा नाम हट गया और मैं विधानसभा में जाते-जाते रह गया।

अब सोचता हूँ तो लगता है, भगवान की विशेष कृपा थी जिसके कारण मैं उस सीट से वंचित हो गया।

इसके बाद जयप्रकाशजी का आंदोलन छिड़ जाने के कारण गया से चुने गये उस प्रत्याशी को, जो बिहार विधान-सभा का सदस्य चुना जा चुका था, जिस दुर्गति का सामना करना पड़ा वह याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उसके घर पर दो बार बम विस्फोट हुए। जुलूस में उसे जूतों का हार पहना कर सारे नगर में घुमाया गया और यदि पुलिस समय पर आकर न बचा देती तो उसे प्राणों से

भी हाथ धोना पड़ता। मैं जयप्रकाशजी का भक्त था और हो सकता है उनकी माँग पर तथा जनता की इच्छा जानकर मैं स्वयं विधानसभा की सीट से त्यागपत्र दे देता जैसा उसने नहीं किया था। नहीं देने पर तो मुझे भी जनता के रोष का उसी प्रकार भागी होना ही पड़ता। कौन जानता है ऊँट किस करवट बैठता!

भगवान ने मुझे मेरे साहित्यिक अभियान के लिए विधानसभा की सीट से वंचित कराकर मेरी सहायता ही की थी क्योंकि काव्य-सृजन ही मेरे जीवन का मूल कार्य था जिससे मेरी चेतना पूर्णतः जुड़ी हुई थी। यद्यपि मैंने अपने संमुख उपस्थित लोकसेवा के कर्त्तव्य से, अपने मूल लक्ष्य की परवाह न करते हुए मुँह मोड़ना उचित नहीं समझा था।

इस संबंध में मुझे महादेवभाई की डायरी में लिखी गाँधीजी के संबंध की चर्चा का स्मरण हो आया था। गाँधीजी ने 1931 में जेल में से ही हरिजनों के दक्षिण के गुरुवायूर मंदिर में प्रवेश के प्रश्न पर आमरण अनशन प्रारंभ कर दिया था। उनसे मिलने बिड़लाजी के समधी जेल में आये और बोले-'बापूजी, आपका जीवन भारत को स्वतंत्र कराने के लिए है, आप ऐसी छोटी-सी बात के लिए उसे क्यों संकट में डाल रहे हैं?' गाँधीजी ने कहा 'छोटी और बड़ी बात मैं नहीं जानता। जो संमुख कर्तव्य दिखाई दे उससे मैं मुँह नहीं मोड़ सकता।' उदाहरण के लिए सामने बरामदे में सो रहे वार्डन की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा, 'अभी यदि कोई काला साँप उस सो रहे व्यक्ति की ओर बढ़े और उसे रोकने में प्राण जाने की आशंका भी हो, तो भी क्या मैं उस साँप से उस व्यक्ति की रक्षा नहीं करूँगा? क्या मैं चुपचाप देखता रहूँगा कि मेरा जीवन तो भारत की स्वतंत्रता के लिए है, एक व्यक्ति की रक्षा के लिए मैं उसे संकट में क्यों डालूँ?' बिड़लाजी के समधी चुप हो गये। बोले, 'बापूजी मैं आपसे बहस करके थोड़े ही जीत सकता हूँ। मैं तो यही निवेदन करता हूँ कि आप अपने प्राणों को संकट में न डालें और अनशन तोड़ दें।'

भगवान को मेरे द्वारा हिंदी-ग़ज़लों के प्रवर्तन के कार्य को संपन्न कराना था तथा मुझे उस धर्मसंकट से बचाना था जो एम. एल. ए. बनकर मुझे भोगना पड़ता, इसलिए मैं अंतिम समय में टिकट से वंचित हो गया। मुझे फिर अपना वही शेर याद आया ---

मैंने जिस ओर भी रक्खे थे बेसुधी में कदम
तूने उस ओर ही मंजिल का रुख़ सुधार लिया।